



अध्याय ९
राजगुह्य योग

श्रीभगवानुवाच ।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ ९-१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा - हे अर्जुन! चूँकि तुम ईर्ष्या से रहित हो, इसीलिए मैं तुम्हें सबसे गूढ़ रहस्य बताऊँगा। मैं इस ज्ञान और इसकी अनुभूति को समझाऊँगा, जिसे जानकर तुम संसार के सारे अमंगल से मुक्त हो जाओगे ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमंधू सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ ९-२ ॥

यह सभी विद्या में सर्वोपरी (राज-विद्या) है, समस्त रहस्यों में सर्वाधिक गोपनीय (राज-गुह्य) है। यह सबसे पवित्र और सबसे उत्कृष्ट है। धर्म का यह मार्ग प्रत्यक्ष रूप से समझा जा सकता है, और यह अभ्यास में सहज एवं अविनाशी है।

अश्रद्धाघानाः पुरुषाधर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ९-३ ॥

हे शत्रु विजेता, जिन्हें धर्म के इस मार्ग पर श्रद्धा नहीं है, वे मुझे कभी प्राप्त नहीं कर सकते और वे जन्म एवं मृत्यु के निरंतर चक्र में पुनर्जन्म लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

जिस योग पद्धति को श्री कृष्ण सबसे बड़ा रहस्य या गुह्य मानते हैं, अब वे अर्जुन को इस विषय पर जोर देकर व्याख्या करेंगे, ताकि अर्जुन के किसी भी शेष संदेहों को दूर किया जा सके। इसका उल्लेख पहले के अध्यायों में किया जा चुका है, लेकिन अब श्रीकृष्ण इसे निर्णायक रूप से स्पष्ट करेंगे। श्रीकृष्ण ही परम सत्य हैं, सृष्टि के कारण हैं, सभी जीवों की उत्पत्ति के स्रोत हैं, नियंत्रक हैं, ज्ञान का उद्देश्य हैं, मंत्र ॐ हैं, और बहुत कुछ भी हैं। जो इस तथ्य को अपने हृदयांतर में जानता है और इसी सैद्धान्तिक संप्रदाय में अपना सारा जीवन व्यतित करता है, वह निश्चित रूप से श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है। यही सकारात्मक प्रोत्साहन है। श्रीकृष्ण द्वारा नकारात्मक प्रोत्साहन को भी समझाया गया है, कि जो लोग उन (श्रीकृष्ण) में दृढ़तापूर्वक नियत नहीं होते हैं, उन्हें जन्म और मृत्यु के इस चक्र में पुनर्जन्म लेना होगा।

श्लोक ३ में श्रीकृष्ण ने अश्रद्धाधानः शब्द का प्रयोग किया है। यह उन लोगों को सूचित करता है जिनके पास भक्ति-योग के लिए दृढ संकल्प नहीं होता। श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति संसार के चक्र में बने रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे किसी “अनन्त नरक” (Eternal Hell) के लिए अभिशप्त हो जाते हैं, परन्तु सीधी भाषा में कहे तो, इसका अर्थ यह है कि वे मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर पाते।

सबसे पहले यह समझना अनिवार्य है कि श्रद्धा ‘सांसारिक विश्वास’ (Belief) नहीं होता, जो आमतौर पर किसी विशेष मत से जुड़ा होता है, जैसे कि यहूदी, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध या हिंदू मत। ईसाई आस्था, मुस्लिम आस्था, हिंदू आस्था, आदि का तात्पर्य विशेष आदर्शों, मिथकों, अंधविश्वासों और हठधर्मिताओं के एक समूह से है, लेकिन श्रद्धा इन सबसे अलग है।

श्रत् दधाति इति श्रद्धाः - जो सत्य और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है, उसे श्रद्धा कहते हैं। भौतिक प्रकृति के प्रदूषण से मुक्त, आत्मानुभूती युक्त साधूओं की संगती के माध्यम से ही श्रद्धा विकसित होती है। ऐसी संगती से ही यह दृढ विश्वास उत्पन्न होता है कि श्रीकृष्ण की शरण लेने से और उन पर आत्मसमर्पण करने से अन्य सभी उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है। ऐसी श्रद्धा और दृढ निश्चय के बिना, व्यक्ति भक्ति-योग के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥९-४॥

मैं अपने अप्रकट रूप से पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हूँ। सभी जीव मेरे सहारे पर हैं, लेकिन मैं उनके सहारे नहीं हूँ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥९-५॥

तथापि सृष्टि की सभी वस्तुएँ मुझमें स्थित नहीं रहतीं। जरा मेरे योग-ऐश्वर्य को देखो! यद्यपि मैं समस्त जीवों का मूल (स्रोत) एवं पालक हूँ, लेकिन मैं ना तो उनसे प्रभावित हूँ, न ही मेरी भौतिक प्रकृति से।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥९-६॥

यह समझने का प्रयास करो कि जिस तरह से प्रबल वायु विशाल आकाश के विस्तार में स्थित है, उसी तरह सभी जीव मुझमें स्थित हैं।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥९-७॥

हे कुन्तीपुत्र, ब्रह्मा के दिन के अंत में, सभी जीव मेरे भीतर प्रवेश करते हैं। और एक नये सृष्टि के आरम्भ में, मैं फिर से उन्हें प्रकट करता हूँ।

प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥९-८॥

क्योंकि मैं भौतिक प्रकृति को नियंत्रित करता हूँ, मैं बारम्बार जीवित प्राणियों को प्रकट करता हूँ, जो असहाय रूप से पूरी तरह से अपने प्राकृतिक स्वभाव के प्रभाव में होते हैं।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९-९॥

हे धनञ्जय, ऐसे कर्म मुझे बांध नहीं सकते। मैं इन कर्मों के प्रति विरक्त और उदासीन रहता हूँ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥९-१०॥

हे कुन्तीपुत्र! यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में ही चर तथा अचर प्राणियों समेत जगत की सृष्टि करती है। प्रकृति के प्रभाव से ही जगत का लगातार सृष्टि एवं विनाश होता रहता है।

~ अनुवृत्ति ~

भौतिक जगत में हर कोई कर्म करता है और भौतिक प्रकृति के नियमों या कर्म के नियमों अनुसार सभी अपने अपने कर्मों के उत्तरदाई होते हैं। न्यूटन के

भौतिकी के तीसरे नियम में कहा गया है कि प्रत्येक क्रिया के लिए एक समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। संक्षिप्त कहीं अधिक जटिल है। 'एक आंख के लिए एक आंख और एक दांत के लिए एक दांत', यह कहावत भी कर्म और इसके परिणाम के नियमों को उचित ढंग से परिभाषित नहीं करता। कर्म, "एक के बदले एक" के सादृश्य से कहीं अधिक गहन और जटिल है। यह कहना पर्याप्त है कि जब भी कोई कर्म करता है तो वह स्वयं उसके परिणाम का उत्तरदायी होता है, चाहे उसका फल जो भी हो। जीवों का भौतिक प्रकृति पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए भौतिक प्रकृति को जीवों की शक्ति से श्रेष्ठ मानना चाहिए, क्योंकि जीवों का भौतिक प्रकृति पर कोई नियंत्रण नहीं होता। लोग प्रकृति का शोषण करने में माहिर हैं, किंतु वे इसके परिणामस्वरूप होने वाली प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित नहीं कर सकते हैं। दूसरी ओर जब श्रीकृष्ण कर्म करते हैं, तब उन्हें कोई कर्म की प्रतिक्रिया नहीं लगती, क्योंकि भौतिक प्रकृति सदा उनके नियंत्रण में ही होती है - ईश्वरः परमः कृष्णः।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥९-११॥

जब मैं मनुष्य रूप में प्रकट होता हूँ, तब मूर्ख मेरा उपहास करते हैं, क्योंकि वे सभी जीवों के सर्वोच्च नियंत्रक के रूप में मेरे दिव्य स्वभाव को नहीं जानते।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृति मोहिनीं श्रिताः ॥९-१२॥

उनकी सभी आकांक्षाएँ, कर्म और ज्ञान निरर्थक और निस्सार हैं। ऐसे व्यक्ति नीच एवं आसुरी स्वभाव को अपनाकर व्यग्र हो जाते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥९-१३॥

परन्तु, जो महापुरुष मेरे दिव्य प्रकृति का शरण ग्रहण करते हैं, वे मुझे सभी जीवों का अविनाशी स्रोत मानकर स्थिर मन से मेरी पूजा करते हैं।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥९-१४॥

ये भक्ति-योगी सदैव मेरी महिमा गाते हुए, दृढसंकल्प से प्रयास करते हुए, मुझे नमस्कार करते हुए, भक्तिभाव से निरन्तर मेरी पूजा करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ ९-१५ ॥

कुछ, अपने आप को मुझसे अलग न मानते हुए, ज्ञान-यज्ञ के माध्यम से मुझे पूजते हैं। अन्य मुझे कई विविध रूपों में पूजते हैं, जबकि कई अन्य मेरे विश्व रूप (विराट रूप) की पूजा करते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

जो भगवद्गीता के संदेश का उपहास करते हैं, उन्हें मूढ़ या मूर्ख-मानसिकता-वाला कहा जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति, जब भगवद्गीता के ज्ञान के विषय-क्षेत्र का सामना करते हैं, तो वे निश्चित रूप से इससे सहमत होंगे, या कम से कम इससे आकर्षित होंगे। इस कारण से भगवद्गीता विश्व में आस्तिक विज्ञान पर सबसे अधिक पढ़ा जाने वाला साहित्य है।

निस्संदेह नास्तिकता कोई नई घटना नहीं है, क्योंकि प्राचीन काल से ही नास्तिकता के मत के लोग रहे हैं। आज, आधुनिक समय में नास्तिकता तर्कसंगत वाद-विवाद के बदले कट्टर-धार्मिक-हठधर्मिता की प्रतिक्रिया के रूप में अधिक प्रेरित है। दरअसल, कई बार नास्तिक लोगों के तर्क उतने ही तर्कहीन होते हैं जितने कि धार्मिक कट्टरपंथियों के। जब एक तर्कवादी के सामने एक तर्कसंगत विवरण प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे इसका स्वीकार करने के लिए तैयार होना चाहिए, भले ही वह प्रस्ताव जहां भी ले जाए, भले ही वह उनके नास्तिक दुनिया के दृष्टिकोण को ही क्षीण बनाए। सत्य या विज्ञान के सच्चे जिज्ञासु की ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिए।

आधुनिक समय में, अधिकांश आस्तिकों और नास्तिकों के बीच के विवाद में, भगवद्गीता का पाठक दोनों का समर्थन नहीं करेगा, क्योंकि दोनों ही मुख्य रूप से उच्चतम ज्ञान से अनभिज्ञ हैं। भगवद्गीता के संपर्क में आने से, नास्तिक और धार्मिक कट्टरपंथी दोनों ही चुप हो जाते हैं, क्योंकि गीता में परम सत्य का ऐसा स्पष्ट निर्णायक ज्ञान निहित है जो अब तक इस संसार में कभी प्रकाशित नहीं था।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ ९-१६ ॥

मैं ही अनुष्ठान हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही अर्पण हूँ, मैं ही पवित्र औषधि हूँ, मैं ही मंत्र हूँ, मैं ही घी हूँ, मैं ही पवित्र अग्नि हूँ, और मैं ही अर्पण की विधी हूँ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ ९-१७ ॥

मैं ही इस जगत का माता और पिता हूँ, मैं ही पालनकर्ता, पितामह, ज्ञान का उद्देश्य, शुद्धिकर्ता, ॐ अक्षर हूँ, और मैं ही ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद हूँ।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ ९-१८ ॥

मैं ही सर्वोच्च लक्ष्य, पालनकर्ता, गुरु, साक्षी, धाम, आश्रय और अत्यन्तप्रिय मित्र हूँ। मैं ही सृजन, पालन, और प्रलय हूँ। मैं ही सब का आश्रय, निधान, तथा अविनाशी बीज हूँ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ ९-१९ ॥

हे अर्जुन, मैं ही गर्मी पैदा करता हूँ और मैं ही वर्षा को लाता और रोकता हूँ। मैं ही अमरत्व और साक्षात् मृत्यु हूँ। मैं ही वास्तविकता और भ्रम हूँ।

~ अनुवृत्ति ~

अगर कोई यह पूछे कि “कृष्ण कहाँ है?” तो कोई एक अन्य प्रश्न के साथ उत्तर दे सकता है – “कहाँ कृष्ण नहीं हैं?” जगत में हर पत्थर और रेत के दाने को पलटने के बाद भी, उस वस्तु को पाना अत्यन्त ही कठिन होगा जिसमें कृष्ण न हो। अंततः कृष्ण जगत और उससे परे भी सर्वत्र व्याप्त हैं। वे विशिष्ट रूप से एक व्यक्ति हैं, हमारे अत्यन्तप्रिय मित्र हैं, हमारे शुभचिंतक हैं, और भगवद्गीता के वक्ता हैं।

यह जानना दिलचस्प है कि संसार के इतिहास में भगवद्गीता के अतिरिक्त अन्य कोई भी साहित्य इतनी स्पष्टता और निर्भीकता से पूर्ण सत्य की घोषणा नहीं

करता। अन्य सभी प्रयास इस तुलना में काफी फीके हैं। यहाँ पूर्ण सत्य स्वयं सीधे भगवद्गीता का संदेश अर्जुन को दे रहा है।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥९-२०॥

जो तीनो वेदों में निपुण हैं वे परोक्ष रूप से मेरी ही पूजा करते हैं, और सोम रस के पान से वे पवित्र होकर स्वर्गलोक की प्राप्ति करते हैं। वे अपने पुण्यो के द्वारा इंद्र लोक पहुंचते हैं, जहाँ वे देवताओं की भांति सुख भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥९-२१॥

स्वर्गलोक के व्यापक सुख का आनंद भोगने के बाद, जब उनके पुण्यकर्मों के फल क्षीण हो जाते हैं, तब वे पुनः इस मृत्युलोक में लौट आते हैं। इसलिए, भौतिक भोग प्राप्त करने के लिए वैदिक अनुष्ठान करने वालों का फल क्षणभंगुर है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥९-२२॥

किन्तु जो लोग अनन्यभाव से मेरे ध्यान में लीन रहते हैं, मेरी पूजा करते हैं और सदैव मेरे साथ जुड़े रहते हैं, उनकी जो कमियां हैं उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो उनके पास है उन्हें संरक्षित रखता हूँ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥९-२३॥

हे कुन्तीपुत्र! जो लोग श्रद्धा के साथ अन्य देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, वास्तव में वे मेरी ही पूजा करते हैं, किन्तु वे यह अनुचित ढंग से करते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

श्री कृष्ण यहां पर सोम रस का पान करने वालों का उल्लेख कर रहे हैं। प्राचीन समय में, कुछ १०,००० साल पहले, सोम, वैदिक अनुष्ठान करने वाले के द्वारा लिया गया एक स्वर्गिक अमृत था, जो उन्हें उच्च लोकों पर पहुंचाने के लिए

जाना जाता था। सोम महज एक नशा पान नहीं था, जैसा कि भगवद्गीता के कुछ पाठकों ने माना है। जो, तीनो वेदों में पारंगत एवं वैदिक अनुष्ठान करने में निपुण होते थे केवल उन्ही को सोम रस पीने की अनुमति थी। कालांतर में समय बीतने के कारण, हम यह नहीं जानते कि वास्तव में सोम कैसे बनाया जाता था, लेकिन हम यह अवश्य जानते हैं कि यह एक अमृत था, और महज शराब, व्हिस्की या गांजे जैसा कोई नशीला पदार्थ नहीं था।

जो वेदों में पारंगत हैं वे उच्च लोक पहुंचते हैं और स्वर्गीय सुखों का आनंद लेते हैं। श्री कृष्ण कहते हैं कि, जब स्वर्गीय सुखों के भोग से उनके पुण्य समाप्त हो जाते हैं, तब वे दोबारा इस भूलोक के नश्वर स्तर पर लौट आते हैं। इसलिए, समझने की बात यह है कि भौतिक सुख के सभी प्रयास अस्थायी हैं, यहां तक कि स्वर्ग लोको में आनंद की अनुभूति भी।

परन्तु, भक्ति-योगी के लिए जटिल और महंगे वैदिक अनुष्ठानों को करने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि इस तरह के अनुष्ठानों के सारे उद्देश्य, भक्ति और कृष्ण के प्रति समर्पण के माध्यम से ही तृप्त हो जाते हैं। श्रीकृष्ण के साथ भक्ति-योगियों की आत्मीयता इस प्रकार से है कि श्रीकृष्ण यह घोषित करते हैं कि उनमें (भक्ति-योगियों में) जो कुछ कमियां हैं उन्हें वे (श्री कृष्ण) पूरा करेंगे और जो उनके पास है उनको वे संरक्षित रखेंगे। जो श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित होते हैं उनके लिए यह श्रीकृष्ण के आश्रय का अनुग्रह है। इसी मूल विषय को भगवद्गीता में शुरू से अंत तक दोहराया जाता है।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ ९-२४ ॥

मैं ही समस्त यज्ञों का भोक्ता एवं स्वामी हूँ। किन्तु जो लोग मेरे वास्तविक दिव्य स्वभाव से अनभिज्ञ हैं, उनका आत्म-साक्षात्कार के मार्ग से पतन हो जाता है।

यान्ति देवव्रता देवान्पितन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ ९-२५ ॥

देवताओं के उपासक देवलोक प्राप्त करते हैं। जो पितरों को पूजते हैं, वे पितरों के पास जाते हैं। भूत और आत्माओं के उपासक भूत और आत्माओं की दुनिया में जाते हैं। लेकिन जो लोग मेरी पूजा करते हैं वे मेरे पास आते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ९-२६ ॥

यदि कोई भक्ति से मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल प्रदान करता है, तो मैं अपने शुद्ध-हृदय वाले भक्त से इनका स्वीकार करता हूँ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ ९-२७ ॥

हे कुन्तीपुत्र! तुम जो भी कार्य करो, जो भी खाओ, जो भी यज्ञ में आहुती दो, जो कुछ भी दान दो, और जो भी तपस्या करो, उसे मुझपर अर्पण के मनोभाव से करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ ९-२८ ॥

ऐसा करने से, तुम कर्म के बन्धन तथा इसके शुभ और अशुभ फलों से मुक्त हो सकोगे। अपने कर्मों के परिणामों को त्यागकर और अपने आप को योग में मेरे साथ जोड़कर, तुम मुक्त होकर मुझे प्राप्त करोगे।

~ अनुवृत्ति ~

इस संसार में बिना कुछ उपभोग किए कोई नहीं रह सकता। भारत में कुछ योगी हैं, जो इस भौतिक जगत के उलझन से बचने के लिए चरमसीमा तक कोशिश करते हैं। इसके लिए वे कपड़े, भोजन और यहां तक कि पानी तक छोड़ देते हैं। लेकिन, क्योंकि वे श्रीकृष्ण को सभी वस्तुएं के स्वामी और भोक्ता के रूप में नहीं पहचान पाते हैं, अंततः वे अपने झूठे त्याग के पद से नीचे गिर जाते हैं। हम इसे “झूठा त्याग” कहते हैं क्योंकि “वास्तविक त्याग” का अर्थ है स्वयं को स्वामी और भोगी होने के विचार का त्याग करना और श्रीकृष्ण को सर्वस्व का स्वामी और भोक्ता समझना।

वास्तविक त्याग के चरण में, हम सबसे पहले श्रीकृष्ण को सब कुछ अर्पण करते हैं और अर्पण के अवशेषों (प्रसाद) को केवल अपने रखरखाव के लिए स्वीकार करते हैं। उपयुक्त मन्त्रों का जाप करके श्रीकृष्ण को भोजन अर्पित करने की प्रक्रिया गुरु से सीखी जानी चाहिए। जब भोजन श्रीकृष्ण को मन्त्र द्वारा अर्पित

किया जाता है तो भोजन कृष्ण प्रसाद बन जाता है। इसे ही हम श्रीकृष्ण की कृपा कहते हैं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई उन्हें भक्ति के साथ एक पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पित करता है तो वह उसे स्वीकार करेंगे। इसका अर्थ यह है कि मांसाहारी खाद्य पदार्थ जैसे कि मांस, मछली और अंडे, साथ ही ऐसी इन वस्तुओं से तैयार व्यंजन, कृष्ण को अर्पण नहीं किया जा सकता। कृष्ण को अर्पण किए जाने वाले खाद्य में सब्जियां, फल, बादाम, अखरोट आदि, अनाज और दूध उत्पाद उपयोग किए जा सकते हैं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि गोपाल, गोरक्षक श्रीकृष्ण को दूध के उत्पादों जैसे कि दही, मक्खन आदि बहुत प्रिय है। श्रीकृष्ण को अर्पण किए जाने वाले ऐसे व्यंजन, व्यक्ति को योग के अभ्यास के लिए स्वस्थ एवं चुस्त बनाता है, और साथ-साथ कर्मों के बंधनों (प्रतिक्रियाओं) से मुक्त कर देता है।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ ९-२९ ॥

सभी जीवों के लिए मुझमें समभाव है। मैं न तो किसी से द्वेष करता हूँ और न ही किसी का पक्ष लेता हूँ। किन्तु जो भी भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करता है वह मुझमें स्थित है और निश्चित रूप से मैं उनके साथ हूँ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ९-३० ॥

भले ही किसी ने जघन्य से जघन्य कर्म भी किया हो, किंतु यदि वह अनन्य भक्ति से मेरी पूजा करता है, तो ऐसे व्यक्ति को साधू माना जाना चाहिए क्योंकि उसका संकल्प उचित है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ९-३१ ॥

वह तुरन्त धर्मात्मा बन जाता है और स्थायी शान्ति प्राप्त करता है। हे कुन्तीपुत्र! निडर होकर घोषणा कर दो कि मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ९-३२ ॥

हे पार्थ! जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्न-जन्मे, स्त्री, वैश्य (व्यापारी), या शूद्र (श्रमिक) ही क्यों न हों, वे भी परमधाम को प्राप्त करते हैं।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ९-३३ ॥

फिर शुद्ध ब्राह्मणों और धर्मपरायण राजाओं का क्या कहना? अतः जब तुम इस नश्वर एवं दुखमय संसार में आये हो, तो अपने आप को मुझपर समर्पित करो।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ९-३४ ॥

सदैव मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मुझे नमन करो। इस तरह, मुझपर आत्मसमर्पण करके तुम निश्चित रूप से मुझे प्राप्त करोगे।

~ अनुवृत्ति ~

यहां यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे सभी जीवों के लिए समान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्ण के लिए “कोई चुने हुए लोग” (chosen people) नहीं हैं। उनके नित्य अवयवभूत अंश के रूप में श्रीकृष्ण की दृष्टि में हर कोई बराबर है। कृष्ण अपनी स्वेच्छा से किसी एक को जीवन का आनंद और दूसरे को पीड़ित नहीं करते हैं। सुख और दुःख हमारे पिछले जन्म में एवं इस जीवन में किए गए धार्मिक या अधार्मिक कार्यों के परिणाम हैं।

जब कोई श्रीकृष्ण के समीप जाने का प्रयास करता है तब श्रीकृष्ण भी तदनुसार उसके साथ सीधा पारस्परिक संबंध बढ़ाते हैं। श्रीकृष्ण के समीप जाने के लिए किसी व्यक्ति को किसी विशेष देश, परिवार, धर्म, जाति या लिंग में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है, ना ही किसी को पहले कुछ पुण्य कर्म, जैसे कि तपस्या या दान करने की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण का द्वार सभी के लिए खुला है और वे प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार के अनुसार अपना संबंध बढ़ाते हैं।

किंतु इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि जो लोग श्रीकृष्ण के प्रति गहरी श्रद्धा रखते हैं और पूरी तरह से उनका शरण ग्रहण करते हैं, वे उन्हें बहुत प्रिय हैं

और जीवन के अंत में वे निश्चित रूप से उनके परम धाम में श्रीकृष्ण को प्राप्त करते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
राजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् - अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए राजगुह्य योग नामक नौवें अध्याय की यहां पर समाप्ती होती है।

